बरबादीकी बुनियाद पर आबादी?

रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स नं० १५

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १९ सम्पादक : मगनभाई प्रभुदास देसाई अंक ४५

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

अहमदाबाद, शनिवार, ता० ७ जनवरी, १९५६

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

भाषा, संस्कृति और राज्योंकी पुनर्रचना

[ता० २१–१२–'५५ को लोकसभामें दिये गये भाषणकी अखबारी रिपोर्टसे।]

अगर हमारे दिमागमें भारतकी यह विशाल कल्पना हो, अगर हमारे पास अेक संविधान हो, परम्परागत प्रथा हो या अिस बातकी पूरी गारंटी हो कि कोअी व्यक्ति किसी राज्यके अिस ओर रहता हो या अुस ओर, अुसे अपने ढंगसे प्रगति और अुन्नति करनेके पूरे पूरे अधिकार और अवसर प्राप्त होंगे, तो किसी राज्यकी सीमाओंके प्रश्न पर अितने अुत्तेजित होनेकी हमें जरूरत न रह जानी चाहिये। मैं अिसी भावनासे अिस प्रश्नको देखता हूं और अुस पर विचार करता हूं। मुझे लगता है कि अिस विशाल और व्यापक दृष्टिकोणको कभी कभी भुला दिया जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि भाषावादके सिद्धान्तको अधिकाधिक फैलाना चाहिये। क्या मैं निश्चित शब्दोंमें यह कह सकता हूं कि अुस सिद्धान्तको मैं बिलकुल, सौ फीसदी, नापसन्द करता हूं? मैं अिसे बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि मैं भाषाको नापसन्द करता हूं, जो हमारे राज-काज, शिक्षण या संस्कृतिकी दृष्टिसे बहुत बड़ा महत्त्व रखती है। मैं यह जरूर मानता हूं कि लोगोंकी भाषाका अुनके शिक्षण या राजकाजके विकासमें अत्यन्त महत्त्वका हाथ होता है। लेकिन मैं अिन दो बातोंमें निश्चित रूपसे फर्क करता हूं।

अपने-आपको अेक भाषाके प्रदेशमें रखने, अुसके आसपास दीवालें खींचने और अुन्हें राज्यकी सीमायें कहनेकी संकुचित भावनाको मैं नापसन्द करता हूं। मैं यह जरूर मानता हूं कि हर भाषाका पूरा पूरा विकास होना चाहिये, क्योंकि मैं नहीं समझता कि लोग अपनी भाषाके बिना अपना सच्चा विकास कर सकते हैं। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि अपनी भाषाके जरिये अपना विकास करनेके लिअे हमें अपने और दूसरे लोगोंके बीच दीवालें खड़ी कर लेनी चाहिये।

साहित्य अकादमीका अध्यक्ष होनेके लिअे मैं कितना ही अयोग्य क्यों न होअूं, फिर भी मैं अिसे अपना विशेष लाभ मानता हूं। वहां हम भारतकी सारी भाषाओंका विचार करते हैं और अुनको प्रोत्साहन देनेका प्रयत्न करते हैं। अिन बातों पर हम जितनी ज्यादा चर्चा करते हैं, अुतनी ज्यादा हमारी समझमें यह बात आती है कि अेक भाषाका प्रोत्साहन, विकास और प्रगति कुछ हद तक भारतकी दूसरी भाषाओंके विकास और अुन्नतिमें सहायक होती है। अेक कदम और आगे बढ़कर मैं कहता हूं कि किसी विदेशी भाषाका ज्ञान भारतीय भाषाओंके विकासमें मदद पहुंचाता है।

अगर विदेशी भाषाओंसे हमारा संबंध नहीं रहता, तो अुन भाषाओंमें आनेवाले विचारोंसे भी हमारा कोअी संपर्क नहीं रहता — न केवल विचारोंसे बल्कि शिल्पविज्ञानसे भी, जो आधुनिक जीवनका अेक अंग है। अिसलिअे हम किसी भाषासे परहेज करनेका विचार न करें।

अुदाहरणके लिअे, अगर मैं बिलकुल साफ बात कहूं तो कुछ लोग अुर्दूसे जिस तरह डरते हैं, वह मेरी समझमें नहीं आता। मैं अुर्दू बोलनेमें गौरव अनुभव करता हूं। मैं अिसे समझ नहीं पाता कि भारतके किसी राज्यमें लोगोंको अैसा क्यों मानना चाहिये कि अुर्दू विदेशी भाषा है या वह अुनके अपने प्रदेश पर आक्रमण करती है। लोगोंकी अिस भावनाको मैं बिलकुल नहीं समझ पाता। हमारे संविधानमें अुर्दूको स्थान दिया गया है। क्या सिर्फ हवामें रहनेके लिअे संविधानमें अुसका जिक्र किया गया है, और जमीन पर अुसे कभी आने ही नहीं दिया जायगा? यही वह संकुचित मनोवृत्ति है, जिसका मैं विरोध करता हूं।

भाषाशास्त्रके संबंधमें दलीलोंमें अुतरना बेकार है। पंजाबी भाषाको ही लीजिये। हमने गुरुमुखी लिपिमें पंजाबीके आरंभके बारेमें, तथा हिन्दीके साथ अुसकी कहां तक समानता है और कहां तक वह हिन्दीसे स्वतंत्र है, क्या वह संस्कृतसे निकली है — वगैरा प्रश्नों पर दलीलें सुनी और जानी हैं, मानो अुनका कोअी बड़ा महत्त्व हो। दरअसल महत्त्व अुस बातका है जो लोग आज करते हैं।

विद्वानों और भाषाशास्त्रियोंको गुरुमुखी, हिन्दी या दूसरी किसी भाषा या लिपिके अतीतका विचार और छानबीन करने दीजिये। अगर पंजाबके या दूसरे प्रदेशके लोग किसी भाषा या लिपिका अुपयोग करनेके आदी हैं या वे किसी भाषाको बोलना और किसी लिपिका अुपयोग करना चाहते हैं, तो मैं अुन्हें अैसा करनेकी पूरी आजादी, हर मौका और हर तरहका प्रोत्साहन देना चाहता हूं।

अगर बिलकुल संकुचित, व्यावहारिक और अवसरवादीकी दृष्टिसे कहा जाय तो आप जितना ज्यादा अिस चीजको दबानेका प्रयत्न करेंगे अुतना ज्यादा अुसका विरोध होगा और वह विरोध दमनसे भी ज्यादा टिकेगा। हर कोअी अिस बातको जानता है।

भाषाके संबंधमें लोगोंके मनमें बड़े गहरे और भावनापूर्ण विचार होते हैं। मैं हिन्दी या दूसरी किसी भाषाके लिअे लोगोंकी भावुकताको समझ सकता हूं। लेकिन जो आदमी अपनी भाषाके लिअे भावुकतासे विचार करता है, अुसे यह भी याद रखना चाहिये कि दूसरा आदमी भी अपनी भाषाके बारेमें अुतनी ही भावुकतासे विचार करता है। यही खास कठिनाअी है। अिसलिअे सबसे

www.vinoba.in

सलामत और अेकमात्र रास्ता यह है कि सब भाषाओंको विकास और अुन्नतिकी पूरी आजादी और पूरा मौका दिया जाय।

अुन्हें बढ़ने दीजिये। कुदरती तौर पर वे धीरे धीरे परिस्थितियोंके अनुकूल अपना विकास साध लेंगी। वे अेक-दूसरे पर अपना असर डालेंगी और अुन्हें प्रभावित करेंगी, और क्षमता हुअी तो अधिकाधिक विकास करेंगी या क्षमताके अभावमें कम विकसित रह जायंगी।

यह कहते फिरना मेरा काम नहीं है कि कोअी भाषा, अुदाहरणके लिअे पंजाबी और गुरुमुखी, अविकसित है। अैसा हो सकता है, लेकिन अुससे कुछ बिगड़ता नहीं। अविकसित भाषाको हमें विकसित बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। कुदरती ताकतोंको ही अिन सब भाषाओंका अुपयोग और महत्त्व बढ़ाने देना चाहिये। किसी भाषाकी निन्दा करने या किसी भाषाका अिनकार करनेका प्रयत्न न केवल अुस भाषाकी दृष्टिसे, बल्कि दूसरी भाषाओं और अुनके बोलनेवालोंकी दृष्टिसे भी बुरा है।

भाषाके प्रश्नका संबंध किसी न किसी तरह राज्योंकी पुनर्रचनाके प्रश्नके साथ जुड़ गया है। लेकिन मैं फिर कहूंगा कि भाषाको बड़ेसे बड़ा महत्त्व देते हुअे भी मैं राज्यके साथ आवश्यक तौर पर अुसका संबंध जोड़नेसे अिनकार करता हूं।

बेशक, भारतमें लाजिमी तौर पर अैसे राज्य रहेंगे, जिनमें अेक भाषा प्रधान होगी। अैसा आज है, होने दीजिये और अैसे राज्योंमें हम अुसे बढ़ावा देते हैं। लेकिन अैसे प्रदेश भी जरूर होंगे जहां साथ-साथ दो भाषायें बोली जाती होंगी। वहां हमें दोनोंको बढ़ावा देना चाहिये।

हमें अिसे बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि अैसे राज्यकी प्रधान भाषा राज्यकी दूसरी भाषाओंको किसी तरह खदेड़ने, दबाने या अुनकी अुपेक्षा करनेका प्रयत्न नहीं करे। अगर यह चीज हमारे दिमागमें साफ है, तो फिर कमसे कम भाषाका प्रश्न तो नहीं अुठता। आर्थिक और दूसरे प्रश्न भले अुठ सकते हैं।

बेशक, भाषाके साथ दूसरी बातें — जैसे सांस्कृतिक प्रश्न — आती हैं, जो अुससे संबंध रखती हैं। अुनका भी अुसी आधार पर विचार होना चाहिये जिस आधार पर भाषाका विचार किया जाता है; अर्थात् हर संस्कृति और संस्कृतिके प्रत्येक स्वरूपको प्रोत्साहन देना चाहिये। संस्कृति अपने-आपमें कोअी अलग चीज नहीं है। संस्कृतिकी परिभाषा ही यह है कि आप जितने ज्यादा ग्रहणशील और अुदार हैं अुतने ज्यादा आप संस्कृत हैं और जितनी ज्यादा दीवालें आप खड़ी करते हैं अुतने ज्यादा आप असंस्कृत हैं। अिसलिअे सांस्कृतिक दृष्टिसे भी हमें संस्कृतिके हर पहलूको बढ़ावा देना चाहिये।

अगर दुनियाके विकास और परिवर्तनोंके साथ कोअी संस्कृति कदम मिला कर नहीं चल सकती तो वह पिछड़ जाती है। अुसे पिछड़ने दीजिये। लेकिन अगर आप किसी संस्कृतिको दबाने या पीछे हटानेका प्रयत्न करेंगे, तो संभव है आपको अुसमें सफलता न मिले। अिससे आप संघर्षको ही जन्म देते हैं, जो शायद आपकी अपनी संस्कृतिको भी नुकसान पहुंचाता है।

(अंग्रेजीसे) जवाहरलाल नेहरू

भाषावार प्रान्त

लेखक : गांधीजी; संपा० भारतन् कुमारप्पा

कीमत ०–४–० डाकखर्च ०–२–०

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद–१४

झूठे डर

देशके सूती कपड़ा-अुद्योगकी आजकी स्थिति और दूसरी पंचवर्षीय योजनाके अर्सेमें अुसके विकासकी संभावनाओंके बारेमें भारत सरकारके व्यापार-अुद्योग विभागकी ओरसे हाल ही अखबारी विज्ञप्ति प्रकाशित किये जानेके बाद अुसी विषय पर भारत-सरकारके व्यापार-अुद्योग विभागके मंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारीके दो महत्त्वपूर्ण भाषणोंकी रिपोर्ट देखनेको मिली। ये भाषण अुन्होंने अेक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल तथा अखिल भारतीय हाथ-करघा बोर्डके सामने नअी दिल्लीमें दिये थे।

अुनकी राय

यह अुनका विचारपूर्वक बना हुआ मत है कि मिलके कपड़ेका अुत्पादन ५ अरब गज तक ही सीमित रखनेकी आजकी नीति गलत है। क्योंकि (१) भारत कपड़ेके निर्यातकी मात्रामें निरंतर वृद्धि करनेकी योजना पहलेसे नहीं बना सकता और अिस वजहसे देशके विदेशी विनिमयकी स्थितिके बारेमें लाभदायी परिणाम नहीं आ सकते; (२) हाथ-करघा अुद्योग अपनी आजकी हालतमें १७० करोड़ गज कपड़ेकी कूती हुअी अतिरिक्त जरूरत पूरी नहीं कर सकता। अिसके सिवा, देशके भीतरी अुपयोगकी अतिरिक्त जरूरतोंका यह अन्दाज बहुत कम कूता गया है; तथा (३) मिलोंके स्टाककी आजकी प्रवृत्तिको देखते हुअे मालूम होता है कि कपड़े जैसे महत्त्वपूर्ण मालकी तंगी न पैदा हो अिसके लिअे पहलेसे ही अुचित कदम अुठाये जाने चाहिये। अिस कारणसे श्री कृष्णमाचारी कमसे कम ५० करोड़ गज कपड़ा मिलों द्वारा ज्यादा तैयार कराना जरूरी समझते हैं।

आवश्यक मात्रामें कपड़ा तैयार करनेके लिअे सूत अुत्पन्न करनेके बारेमें भी वे कर्वे-समितिकी अिस सिफारिशको 'हाथ-करघोंके लिअे जरूरी सूत मुहैया करनेके रास्तेमें रुकावट' समझते हैं कि अम्बर चरखेके चल रहे प्रयोगोंके परिणाम जब तक मालूम न हो जायं, तब तक मिलोंको अपने तकुओंमें वृद्धि करनेके लाअिसेन्स न दिये जायं। वास्तवमें वे यह मानते हैं कि 'कर्वे-समितिकी मिलोंके सूतका अुत्पादन स्थगित करनेकी सिफारिश हाथ-करघा अुद्योगके हितमें नहीं है।' अिसलिअे बारीक सूत काफी मात्रामें मिल सके अिस खयालसे और कपड़ा-अुद्योगके खानगी सेक्टरमें पैदा होनेवाले सूतकी कीमत पर नियंत्रण रखनेके खयालसे वे सरकारी सेक्टरमें अेक लाख तकुओंवाले तीन कारखाने खोलनेकी अिच्छा रखते हैं। अखबारी रिपोर्टके अनुसार हाथ-करघा बोर्डने यह निर्णय किया है कि तकुअे बढ़ाने चाहियें, लेकिन यह वृद्धि सरकारी या सहकारी क्षेत्रमें होनी चाहिये। फिर भी यह कहना चाहिये कि बोर्ड अुत्पादनकी विकेन्द्रित पद्धतिको पसन्द करता है।

निर्यातकी गुंजाअिश

योजना-कमीशनने १९५५-५८ के अर्सेमें सूती कपड़ेके निर्यातका लक्ष्य अेक अरब गज निर्धारित किया है। १९५१ के आखिरी तीन महीनोंसे लेकर आज तकका भारतके निर्यात-संबंधी परंपरागत और नये बाजारोंका झुकाव आन्तरराष्ट्रीय होड़में वृद्धि हुअी बताता है। अिसका कारण कुछ हद तक जापानका फिर खड़ा होकर कपड़ा-बाजारमें दाखिल होना है और कुछ हद तक सूती कपड़ेके बदले अधिक मात्रामें रेयोन और दूसरे पदार्थोंका अुपलब्ध होना है। अेक ओर सूती कपड़ेका निर्यात करनेवाले दुनियाके सारे देशोंके फिरसे खड़े होकर बाजारमें प्रवेश करनेसे और दूसरी ओर रेयोन, नकली रेशम तथा अैसी दूसरी चीजोंका अुत्पादन बढ़नेसे सूती कपड़ेके अधिक निर्यातको धक्का पहुंचा है। अिसके फलस्वरूप अेक अरब गज सूती कपड़ेके निर्यातका लक्ष्य तय करनेके बावजूद

www.vinoba.in

भारत औसतन् ८० करोड़ गजसे कम सूती कपड़ा बाहर भेज सका है। अेक तरफ भारतके निर्यात-बाजारोंमें यह झुकाव जारी रहनेकी संभावनाको देखते हुअे तथा दूसरी तरफ सूती कपड़ेकी गरज पूरी करनेवाली कपड़ेकी दूसरी किस्में अधिक मात्रामें मिलने लगेंगी अिसका खयाल करते हुअे कपड़ा-अुद्योग जांच समितिने यह बताया है कि १९६० तक निर्यातके लिअे अेक अरब गजसे ज्यादा कपड़ेकी जरूरत नहीं रहेगी। अुसके बाद अैसी कोअी घटना नहीं घटी, जो श्री कृष्णमाचारीके अिस मतका समर्थन करे कि निर्यात-बाजारोंमें सुधार होनेवाला है।

हाथ-करघोंकी अुत्पादन-शक्ति

दूसरे, अुनकी यह राय बिलकुल गलत है कि हाथ-करघा अुद्योग अपना अुत्पादन अेक अरब गजसे ज्यादा नहीं बढ़ा सकता। पिछले दस वर्षोंसे हाथकी मददसे ढरकी फेंकनेके करघोंकी जगह अधिकाधिक मात्रामें झटका-करघे लेते जा रहे हैं। और अिस वजहसे साधारण हाथ-करघेकी अुत्पादन-शक्ति रोजाना औसत ३ गजसे बढ़कर ६ गज हो गअी है, यद्यपि देशके पूर्वी और पश्चिमी भागोंमें तो काफी संख्यामें हाथ-करघे रोजाना ८ से १० गज तक कपड़ा बुनते हैं (देखिये कपड़ा-अुद्योग जांच समितिकी रिपोर्टमें दिये गये आंकड़े — भाग ३)। हाथ-करघेका रोजाना औसत अुत्पादन ६ गज मानें और सालमें ३०० कामके दिन मानें, तो २० लाख हाथ-करघोंकी अुत्पादन-क्षमता (६ × ३०० × २० लाख) ३ अरब ६० करोड़ गज होगी; अथवा यह कहा जा सकता है कि आज अुनके अुत्पादनका अंदाज जो १५० करोड़ गज कूता गया है, अुससे २१० करोड़ गज अधिक कपड़ा वे तैयार कर सकेंगे।

सूतकी जरूरत

अखबारी रिपोर्टके अनुसार श्री कृष्णमाचारीका यह बयान बिलकुल गलत है कि कर्वे-समितिने 'मिलोंके सूतके अुत्पादनको स्थगित करने' की सिफारिश की है। अिसके बजाय कर्वे-समितिने अिस प्रश्नकी बारीकीसे विस्तृत जांच की है और यह सिद्ध कर दिखाया है कि कताअी करनेवाली मिलोंमें तथा कताअी-बुनाअीका काम करनेवाली मिलोंमें आज जितने तकुअे हैं तथा हालमें ही अुन्हें जितने नये तकुअे बढ़ानेके परवाने दिये गये हैं, अुन सबसे पूरा काम लिया जाय, तो १९५७-५८ के अन्त तक अतिरिक्त आवश्यक कपड़ा तैयार करनेके लिअे जरूरी सूत मिल सकेगा और देशमें सूतकी तंगी पैदा होनेकी थोड़ी भी संभावना नहीं है। अतः यह कहना निरी भूल है कि कर्वे-समितिने 'मिलोंके सूतके अुत्पादनको स्थगित करने' की सिफारिश की है।

कर्वे-समितिका यह अनुमान है कि हर किस्मकी मिलोंमें आज जो तकुअे चल रहे हैं अुनसे तथा १८,४०,००० जो नये तकुअे दाखिल करनेके परवाने दिये गये हैं अुनसे आवश्यक मात्रामें सूत पैदा हो सकेगा। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो समितिने अपना अन्दाज लगाते समय अमुक मिलोंके काम न कर सकनेकी तथा परवानेके अनुसार तकुअे दाखिल न हो सकनेकी संभावनाओंका भी ध्यान रखा है। अिस तरह कर्वे-समितिकी यह राय देशमें कपड़ेकी मांगमें होनेवाली वृद्धिकी संभावनाकी तथा आज मिलोंमें चल रहे और १९५७–५८ के अन्त तक नये बढ़ाये जानेवाले तकुओंके सूत-अुत्पादन वगैरा बातोंकी बारीक, सावधानीपूर्ण और निष्पक्ष जांचके आधार पर बनी हुअी है। दूसरे शब्दोंमें, अुस समितिने आज मिलोंमें चल रहे तकुओं द्वारा तथा दिये गये परवानोंके अनुसार बढ़ाये जानेवाले नये तकुओं द्वारा होनेवाले सूतके ज्यादासे ज्यादा अुत्पादनकी कल्पना की थी और 'मिलोंमें सूतके अुत्पादनको स्थगित करने' की अुसने बिलकुल सिफारिश नहीं की। सूतकी संभाव्य तंगीके कारण अधिक तकुओंके लिअे परवाने देनेका कदम परिस्थितिका तटस्थ और निष्पक्ष अनुमान नहीं मालूम होता।

अिस बात पर बार-बार जोर दिया जाना चाहिये कि व्यापार-अुद्योग मंत्रीने प्रकट किये हैं वैसे डरानेवाले विचार जिन लोगोंको नये तकुअे दाखिल करनेके परवाने दिये गये हैं अुन्हें वैसा करनेके लिअे निरुत्साहित करके तथा सूतके अतिरिक्त अुत्पादनको घटाकर अुस संकटको जल्दी लायेंगे, जिसे मंत्री महोदय टालना चाहते मालूम होते हैं।

खानगी क्षेत्र द्वारा ली जानेवाली सूतकी कीमत पर नियंत्रण रखनेके लिअे सरकारी क्षेत्रमें सूत अुत्पादन करनेके तीन कारखाने तुरन्त खोलनेकी श्री कृष्णमाचारीकी सूचना ज्ञात और प्रमाणित अनुभवके खिलाफ है। सहकारी पद्धतिसे चलनेवाली मिलोंके सूतके भाव मौजूदा मिलोंके सूतके भावोंसे बहुत अूंचे होते हैं। सूतकी अतिरिक्त मिलें बहुत संभव है सूतके भाव अिससे भी ज्यादा बढ़ा दें, खास करके अिसलिअे कि आज सरकारी क्षेत्रमें मिलोंकी व्यवस्था करना कोअी आसान काम नहीं है। अैसा करनेमें संभावना अिसी बातकी है कि मंत्री महोदय जो हेतु सिद्ध करना चाहते हैं, वह सिद्ध न हो और आज जो सवाल काफी अुलझा हुआ है वह और ज्यादा अुलझ जाय।

डरानेवाले विचार

ये डरानेवाले विचार हैं और अम्बर चरखेकी — जिसका अुद्देश्य सामाजिक और आर्थिक है — संभावनाओंके बारेमें पूर्वग्रह पैदा करते हैं। परिस्थितिकी दूसरी हकीकतें भी अिस बातका समर्थन करती हैं। कताअी और बुनाअी दोनों काम करनेवाली तथा केवल कातनेका काम करनेवाली कुल मिलोंमें से १८ पहले प्रकारकी और ८ दूसरे प्रकारकी मिलें या कुल २६ मिलें आज बेकार पड़ी हैं। अुचित कदम अुठाकर अुनकी अुत्पादन-शक्तिका राष्ट्रके हितमें लाभ अुठाया जा सकता है। दूसरे, संकटकी स्थिति पैदा होने पर — जिसकी अूपर बताये मुताबिक संभावना नहीं है — मौजूदा १ करोड़ १९ लाख तकुओंसे पूरा पूरा काम लिया जा सकता है। आज तो पहले प्रकारकी मिलोंमें केवल ८३ प्रतिशत, दूसरे प्रकारकी मिलोंमें ७८ प्रतिशत और मौजूदा तकुओंके केवल ३० प्रतिशत तकुओंका ही अुपयोग होता है। अिन तकुओंसे और अधिक काम लिया जा सकता है, यह समझनेके लिअे किसी दलीलकी जरूरत नहीं है। अिसके सिवा, गृह-अुद्योगके हाथ-करघों और/अथवा मिलोंके यंत्र-करघोंके हितमें सरकार सूतके निर्यात पर अवश्य प्रतिबंध लगा सकती है।

मिलोंमें निकम्मे पड़े हुअे करघों पर भी यही बात लागू होती है। अैसा अन्दाज लगाया गया है कि पहली पालीमें २० हजार और दूसरी पालीमें ४० हजार करघे बेकार रहते हैं। अगर किसी समय संकट आ ही जाय तो समाजके हितमें अुसका सामना करनेके लिअे आजके कपड़ा-अुद्योगके पास काफी साधन मौजूद हैं।

थोड़ेमें, सरकारके व्यापार-अुद्योग विभागकी ओरसे सूती कपड़ा-अुद्योगमें तथा देशमें संकट और भयका वातावरण अुत्पन्न करनेके जो बार-बार प्रयत्न किये जाते हैं, अुनसे कर्वे-समिति द्वारा प्रकट किये गये अत्यन्त विवेकपूर्ण, तटस्थ और सन्तुलित विचारोंके बारेमें पूर्वग्रह पैदा करनेके सिवा और कोअी अुद्देश्य सिद्ध नहीं होता। यहां यह याद रखना चाहिये कि भारतके दो सबसे प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्रियोंने अपनी सेवायें अिस समितिको दी थीं।

(अंग्रेजीसे) **प्राणलाल अेस० कापड़िया**

www.vinoba.in

हरिजनसेवक

७ जनवरी १९५६

बरबादीकी बुनियाद पर आबादी?

नये अर्थशास्त्र और यंत्रोद्योगोंके हिमायती लोग आजकल यह बात कहने लगे हैं कि यदि छोटे-छोटे गृह-अुद्योगों और ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन दिया जायगा, तो अुत्पादन घटेगा और लोगोंकी आबादी, खुशहाली, बढ़नेके बजाय अुलटी गरीबीका सब लोगोंमें बंटवारा होगा। अिस दलीलमें कुछ सरकारी जिम्मेदार मंत्री भी अुलझे हुअे मालूम होते हैं। परन्तु अिस दलीलमें सचमुच कोअी सार हो तो अुसे समझ लेना चाहिये।

अुपरोक्त दलीलका आधार अिस मान्यता पर है कि कारखानोंमें यंत्रोंसे काम लिया जाता है अिसलिअे मालका अुत्पादन बड़े पैमाने पर होता है; छोटे पैमाने पर चलते माने जानेवाले ग्रामोद्योग अैसा नहीं कर सकते। अेक यंत्रके साथ या अुस पर निगरानी रखनेवाले आदमीके साथ हाथसे काम करनेवाले कारीगरकी या अुसके औजारकी तुलना करनेसे तुरन्त पता चल जायगा कि अूपरकी बात दीयेके प्रकाश जैसी स्पष्ट है। यंत्र तेल, कोयला वगैराकी शक्तिसे चलता है, अिसलिअे अुसका कामगार बहुत माल पैदा करता है। हाथसे अपने औजार चलानेवाला हाथ-कारीगर अुतना माल कभी पैदा कर ही नहीं सकता।

परन्तु यहां अेक दूसरी बातका हमें विचार करना चाहिये। हाथ-कारीगरका बल अुसकी संख्या है। अिसलिअे हमारे देशके असंख्य बेकार लोगोंकी संख्यासे अेक आदमीके अुत्पादनका गुणाकार करें, तो वह रकम जितनी चाहिये अुतनी हो जायगी। अिस बातको ध्यानमें रखा जाय तो यंत्रके पक्षमें जो दलील दी जाती है, वह टिक नहीं पाती।

लेकिन कहनेवाले कह सकते हैं कि अितनी बड़ी संख्या काममें लगे तब न? अैसा न हो तो क्या हालत होगी? और लगभग यही मान लिया जाता है कि लोगोंकी अितनी बड़ी संख्या काममें लग ही नहीं सकती।

अिसलिअे यंत्रके हिमायतियोंकी दलील आगे बढ़ती है कि लोगोंकी बड़ी संख्या काममें न लगे तो देशमें मालकी तंगी पैदा होगी। अतः यंत्रोद्योगोंके अुत्पादन पर नियंत्रण नहीं लगाना चाहिये; भले हाथ-अुद्योग चलाये जायं, परन्तु यंत्रोद्योगोंको चलनेसे न रोका जाय।

अिस दलीलको कुछ देरके लिअे स्वीकार कर लिया जाय तो दूसरी बड़ी कठिनाअी सामने आती है। यंत्रोद्योग खोलनेमें अपार पूंजीकी जरूरत है; वह पूंजी कहांसे लाअी जाय? दूसरे, यंत्र हमारी अिच्छाके अनुसार नहीं चलते। अिसके सिवा मजदूर भी वशमें रहकर काम नहीं करते। लेकिन अिससे भी बड़ी और सच्ची कठिनाअी तो यह है कि यंत्र बहुतसे लोगोंको काम नहीं दे सकते। और आजकी वैज्ञानिक हवा अिस तरहके यंत्रोंकी शोध करनेकी बन गअी है, जिनके लिअे यथासंभव कमसे कम आदमियोंको रखना पड़े — जो पूरी तरह अपने-आप चलें। अगर अैसा हुआ तो देशके करोड़ों बेकारोंका क्या होगा? लोगोंके बेकार रहते हुअे सिर्फ माल पैदा करते रहनेकी नीति कब तक चल सकती है और किस आधार पर टिक सकती है? पैदा होनेवाले मालको विदेशोंमें भेजनेकी भी अेक हद होगी। और अुससे देशकी जनताको भला क्या फायदा होनेवाला है? थोड़ेसे अुद्योगपतियोंको मुनाफा मिलेगा और सरकारको ज्यादासे ज्यादा करकी आमदनी होगी। पर अुससे देशकी जनताको क्या मिलेगा?

यंत्रोद्योगवादियोंके पास अिस समस्याका कोअी अुत्तर नहीं है। और अिसी कारणसे अुनकी सारी दलील खतम हो जाती है। अैसी हालतमें वे अिस बातको टालकर या निगलकर अूपर कही गअी यह बात सामने रखते हैं कि अगर देशके बेकार लोगोंके लिअे ग्रामोद्योगोंका सोचा हुआ संगठन न किया जा सका तो मालकी तंगी पैदा होगी; अिसलिअे यंत्रोद्योगोंके मालके अुत्पादन पर नियंत्रण न लगाया जाय। और अैसा कहते समय अुनके मनमें यह विश्वास तो रहता ही है कि दोनोंकी होड़में हमारी ही जीत होगी। अतः अुपरोक्त बात कहनेमें अुन्हें दुहरा पुण्य मिलता है — गांधीजी द्वारा बताये हुअे ग्रामोद्योग चलानेकी बात कहनेका भी पुण्य-लाभ होता है और साथ ही अुनके मनपसंद यंत्रोद्योग भी फलते-फूलते रहते हैं।

अिस कारणसे हमारा आजका सवाल अलग शकल अख्तियार कर लेता है। पुराणपंथी अर्थशास्त्री और अुद्योगपति कहते हैं कि कुल अुत्पादन बढ़नेमें ही देशकी आबादी और खुशहाली है। अिसी मान्यतासे साम्यवादियोंने रूसमें काम किया था। कुछ जानकारोंका कहना है कि प्रसिद्ध आंकड़ाशास्त्री प्रो० महलनवीसने अिसी मान्यताके आधार पर नअी पंचवर्षीय योजना तैयार की है। परन्तु अुसमें अुन्होंने यह बात नअी जोड़ी है कि घर-गृहस्थीके अुपयोगकी चीजोंका अुत्पादन बढ़ानेके लिअे अिस समय छोटे ग्रामोद्योगोंका आसरा लेना ठीक होगा। अुससे बेकारी दूर करनेका कीमती लाभ भी आजकी स्थितिमें मिल सकेगा। और सरकारको लगता है कि बेकारी दूर करना जरूरी भी है।

अिसका अर्थ यह कि यंत्रोद्योगोंके पक्षपाती अुत्पादनको पहली और बेकारी-निवारणको दूसरी बात मानकर चलते हैं। यह तो सब कोअी स्वीकार करते हैं कि बेकारी निरी बरबादी है। अैसा कहनेमें भी कोअी हर्ज नहीं कि अुत्पादन बढ़नेमें देशकी आबादी है। परन्तु यदि यंत्रोंके जरिये अुत्पादन बढ़ाया जाय और बेकारीका सीधा सामना करनेके लिअे कोअी कदम न अुठाये जायं, तो यह बरबादीकी बुनियाद पर आबादीको खड़ा करनेका रास्ता होगा। जाहिर है कि यह गलत रास्ता होगा; अितना ही नहीं, यह आबादी भी भुलावेमें डालनेवाली और धोखा देनेवाली साबित होगी। जिस हद तक हम बेकारी दूर करेंगे, अुसी हद तक हमारी सच्ची आबादी बढ़ी अैसा हमें समझना चाहिये। किसी न किसी तरह अुत्पादन बढ़ानेकी बात हमें तभी पुसा सकती है, जब हम पूंजीवादी या साम्राज्यवादी बन जायं। अथवा अैसा करनेके लिअे हमें लोकशाहीको हमेशाके लिअे छोड़कर संभव हो तो रूसकी जबरदस्तीकी नीतिसे काम लेना होगा। पर अिन दोनों रास्तोंको हमने छोड़ दिया है। तब फिर तीसरा रास्ता यह रह जाता है कि देशव्यापी संगठन करके ग्रामोद्योग चलानेकी अनिवार्य अर्थनीति बनाअी जाय और गांवोंमें आलसी और बेकार पड़े हुअे लोगोंसे पुकार पुकार कर कहा जाय कि आलस छोड़कर काम करो और खूब माल पैदा करो; सरकार अिसके लिअे अब हर तरहकी मदद करनेको तैयार है। अिसके बावजूद अगर गांवके लोग न जागें, तो अुसके दुःखको दुःख न मानना चाहिये और अिसके बदले यंत्रोंकी संख्या बढ़ाकर जाने-अनजाने बेकारीको कायम रखनेकी नीतिको बढ़ावा नहीं देना चाहिये। अिसी तरह मालकी तंगीका झूठा डर भी नहीं रखना चाहिये। यह डर कैसा माना जायगा? 'स्वराज्य आयेगा तो तुम हिन्दुस्तानियोंमें अेका न होनेसे तुम आपसमें लड़ मरोगे; अिसलिअे पहले अेक हो जाओ', अिस तरह अंग्रेज हमें डराते थे। गांधीजीने अन्तमें अुनसे कह दिया, 'भले सारे देशमें अन्धाधुंधी फैल जाय, परन्तु आप यहांसे

www.vinoba.in

चले जाअिये; फिर हम अपना निबट लेंगे।' अिसी तरह हमें बेकारी दूर करनेके बारेमें भी सख्तीसे काम लेना होगा। बेकारी देशकी बरबादी है — केवल आर्थिक नहीं परन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक भी। बेकारी या बरबादीकी बुनियाद पर आबादी देखनेके यंत्रोद्योगी रास्तेकी मायासे छूट जानेकी जरूरत है। वर्ना भारतमें आर्थिक स्वतंत्रता और समानताका स्वप्न स्वप्न ही बना रहेगा।

विचारकी स्पष्टताके लिअे अन्तमें अेक बात स्पष्ट कर देना चाहिये। जाहिर है कि अूपरकी चर्चा खाने-पीने, कपड़ा वगैरा माल अुत्पन्न करनेवाले अुद्योगोंके सम्बन्धमें है। लोहा, फौलाद, बिजली वगैरा जैसे बड़े अुद्योगों — जो अिनेगिने ही होंगे — के सम्बन्धमें नहीं है।

२८-१२-'५५ मगनभाई देसाई
(गुजरातीसे)

अम्बर चरखेके बारेमें विवाद

अिस समय अेक ओर हाथ-करघों और अम्बर चरखेके जरिये और दूसरी ओर कपड़ा-मिलोंके जरिये कपड़ा अुत्पन्न करनेकी पद्धतियोंके बीच सन्तुलन कायम करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया जा रहा है। नहीं, अेक तरहसे तो देशके लिअे आवश्यक कपड़ेकी अतिरिक्त मात्रा मिलोंके जरिये तैयार करनेको तरजीह दी जा रही है। भारत जैसे देशमें कपड़े जैसी रोजाना अुपयोगकी चीजोंके अतिरिक्त अुत्पादनका कोअी अर्थ नहीं है, अगर देशके लाखों लोगोंको तत्काल काम देनेवाले साधनोंकी व्यवस्था करके अुत्पादनके साथ ही अुनकी खरीद-शक्ति भी नहीं बढ़ाअी जाती। विकासकी किसी भी राष्ट्रीय योजनाका तात्कालिक सामाजिक अुद्देश्य भारतके नागरिकोंके लिअे जल्दीसे जल्दी पूरे कामकी व्यवस्था करना होना चाहिये। लोकशाहीकी पद्धतिसे चलनेवाले किसी भी राज्यको अुज्ज्वल भविष्यकी आशा पर अपने लाखों लोगोंको जबरन् बेकार रखकर भूखों मारना पुसा नहीं सकता। दूरके भविष्यके लिअे, भले वह कितना ही आशाप्रद क्यों न दिखाअी दे, तात्कालिक अल्पतम जरूरतोंकी कुरबानी नहीं की जा सकती। हाथ-करघों और अम्बर चरखेके जरिये तैयार होनेवाला कपड़ा निश्चित रूपसे कपड़ेका अुत्पादन बढ़ानेके साथ ही तुलनामें थोड़े खर्चसे लाखों भूखों मर रहे नागरिकोंको काम देनेकी भी योजना करता है।

भारत अपनी भारी जनसंख्या और बड़े पैमाने पर फैली हुअी बेकारीके साथ रूस या पश्चिमी देशोंकी अुत्पादन-पद्धतिका अनुसरण करके लाभ नहीं अुठा सकता। रूसने अपने बड़े अुद्योगोंके लिअे पैसा जुटानेके खातिर तानाशाही ढंगसे अपने लाखों निर्दोष नागरिकोंकी बेरहमीसे कुरबानी की, जब कि पश्चिमी देशोंके अधिकारमें निर्दय शोषणके लिअे अनेक अेशियाअी और अफ्रीकी अुपनिवेश थे। भारतको अपनी परिस्थितियोंको देखकर अपने लिअे स्वतंत्र अुत्पादन-पद्धतिका विकास करना होगा। यहां हमें अैसी ही मशीनोंकी जरूरत है, जो सस्ती हों और श्रम-प्रधान हों, न कि महंगी और श्रम बचानेवाली। अम्बर चरखे जैसे औजारसे छोटे पैमाने पर होनेवाला अुत्पादन सही दिशाका अुत्पादन है, जिसे प्रोत्साहन और संरक्षण मिलना चाहिये।

हमें अैसी परिस्थितियोंको बढ़ावा नहीं देना चाहिये, जो दूसरी पंचवर्षीय योजनाके अन्त तक भी बेकारी और आधी भुखमरीकी समस्याओंके सन्तोषकारी ढंगसे हल न होने पर हमारी जनताको हिंसक क्रान्तिकी ओर ले जायं। अैसे संकटको टालनेके लिअे चुकायी जानेवाली कोअी भी कीमत बहुत महंगी नहीं होगी।

अम्बर चरखेकी अुपयोगिता और लाभका अूपरकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये।

दिल्ली, २४-१२-'५५ रूपनारायण
(अंग्रेजीसे)

टिप्पणियां

हिरोशिमाका स्मारक स्तंभ

हिरोशिमाके लोगोंने अपने अणुबमसे भस्मीभूत हुअे शहरके केन्द्रमें अेक स्मारक स्तंभ खड़ा किया है, ठीक अुसी जगह जहां ६ अगस्त, १९४५ के बुरे दिन वह बम फूटा था। अुस स्तंभ पर पश्चात्ताप और भविष्यके लिअे आश्वासनका यह सन्देश खोदा गया है: "भगवान आपकी आत्माको शांति प्रदान करे, क्योंकि हम दुबारा यह पाप नहीं करेंगे।"

कियोशी टेनिमोटा, जो अुस अभागे शहरके अेक जापानी ओसाओी पादरी हैं, अुस दिनकी अणुबमकी भयंकर आगसे बचे हुअे कुछ लोगोंमें से अेक हैं। वे अपने 'हम अपने पापको नहीं दोहरायेंगे' नामक लेखमें अुस दिनका वर्णन करते हैं, जिस दिन अणुबमकी नारकीय आगने अुनके शहरको निगलकर बरबाद कर दिया था। परंतु अपने लेखके अन्तमें वे गहरे दुःखके साथ कहते हैं कि दुनियाने अभी तक युद्धका त्याग नहीं किया है। अिसलिअे हम नहीं जानते कि अणुबम और हाअीड्रोजन बमोंका विस्फोट करके हम सारी मनुष्य-जातिका संहार करनेका "अपना पाप दोहरायेंगे" या नहीं। बेशक यह शैतानका काम है; निश्चित ही यह ओसाअियोंको शोभा देनेवाला काम नहीं है। पोपने दुनियाके ओसाओी राज्योंसे, जो ये भयंकर और नारकीय हथियार बनाते हैं, अुनकी आजमाअिश करते हैं और गुप्त रूपसे अुन पर अधिकार रखते हैं, अिन बमोंके अुपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगानेकी बात कहकर सुन्दर काम किया है। क्या वे राज्य पोपकी अिस सलाह पर ध्यान देंगे और अिस पापको नहीं दोहरायेंगे?

३१-१२-'५५ म० प्र०
(अंग्रेजीसे)

तामिलनाड़में हिन्दी

तामिलनाड़ हिन्दी प्रचारकोंका ११ वां सम्मेलन लोकसभाके अुपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरके सभापतित्वमें तिरुच्चिरा-पल्लीमें हुआ। यह जानकर पाठकोंको खुशी होगी कि सम्मेलनने जो प्रस्ताव पास किये, अुनमें राजभाषा कमीशनकी नियुक्तिका स्वागत किया गया है, सरकारसे यह प्रार्थना की गअी है कि हाअीस्कूलमें पहले दर्जेसे हिन्दीको अध्ययनका अनिवार्य विषय बना दिया जाय, अुसके शिक्षणके लिअे हफ्तेमें पांच समय (पीरियड) रखे जायं और सुचारू रूपसे काम करनेवाले हर हाअीस्कूलमें अेक प्रथम श्रेणीकी योग्यता रखनेवाला हिन्दी प्रचारक नियुक्त किया जाय। ये अुन मुद्दोंमें से कुछ मुद्दे हैं, जिन पर हिन्दी प्रचारके संबंधमें संमेलनने विचार किया है। अेक ध्यान देने लायक प्रस्तावमें कहा गया है: "यह सम्मेलन सिफारिश करता है कि अध्ययनकी सारी शाखाओंमें जो आन्तरराष्ट्रीय पारिभाषिक शब्द प्रचलित हैं अुन्हें हिन्दीमें अपना लिया जाय और पाठकोंके लिअे किसी भी भाषाको सीखना आसान बनानेके लिअे सारी भारतीय भाषाओंके लिअे अेक समान लिपि स्वीकार की जाय।"

अिससे देशके दूसरे भागोंमें कुछ लोगोंके मनमें रही यह शंका दूर हो जानी चाहिये कि तामिलनाड़ अखिल भारतीय आन्तर-भाषा सीखनेमें आगापीछा कर रहा है।

३०-१२-'५५ म० प्र०
(अंग्रेजीसे)

सर्वोदय
लेखक: गांधीजी; संपा० भारतन् कुमारप्पा
कीमत २-८-० डाकखर्च ०-१२-०
नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४

www.vinoba.in

अिनका बेली कौन?

२९ अक्तूबर, १९५५ के 'हरिजनसेवक' में 'अमानवीय क्रूरता' शीर्षक टिप्पणी पढ़ते समय मैं सोच रहा था कि पत्रलेखक अुस हरिजनकी मददके लिअे दौड़ा जायेगा और अुसे बचानेमें अपनी जान खतरेमें डाल देगा। लेकिन वे महाशय तो अन्त तक खड़े देखते ही रहे। वह बिचारा हरिजन मार खाते-खाते जमीन पर गिर पड़ा। फिर अुठकर अपनी जान बचाकर भागा तो भी मारनेवालेने अुसका पीछा किया। आखिर वह नदीमें कूद पड़ा। अुसकी जरा भी सहायता न तो अुसके साथी हरिजनोंने की और न पत्रलेखक सभ्य सज्जनने।

मारनेवालेकी क्रूरताकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। लेकिन देखनेवालोंने अुसे सहन करके जो कायरता बताअी, वह भी क्या कम दुःख और शर्मकी बात है? अुस गरीब हरिजनकी रक्षा करते करते यदि पत्रलेखककी कमर पर भी दो-चार बांस और ढेले पड़ जाते तो कौनसी बड़ी बात हो जाती? हमारी दया वंध्या हो गअी है। क्या क्रूरताका साक्षी बनकर केवल देखते रहना क्रूरता करनेवालेको अुत्तेजन देना नहीं है?

हम हरिजनोंके प्रति दयाकी चिकनी-चुपड़ी बातें करना तो बहुत जानते हैं, लेकिन अुनकी आफतके समय बीचमें कूद पड़नेकी हिम्मत नहीं बताते। जब तक अैसी थोथी दयाका प्रदर्शन होता रहेगा और अुनकी आगमें कूद पड़नेकी हिम्मत रखनेवाले पैदा नहीं होंगे, तब तक अैसी क्रूरता बन्द होनेकी आशा रखना व्यर्थ है।

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंकी बस्ती अलग बसानेको हम अन्यायपूर्ण मानते हैं, तो हम अपने घरमें हरिजनोंके प्रति क्या कर रहे हैं? अुनको सवर्ण मोहल्लोंमें रहनेके घर भाड़ेसे भी नहीं मिलते। सवर्णोंके पास मकान बनानेको जमीन नहीं मिलती। जहां खानपान छूनेका संबंध आता है वहां नौकरी नहीं मिलती। सरकारी आफिसोंमें भी यह सोचा जाता है कि चपरासी अैसा हो जिसके हाथका पानी पी सकें। समानताका कानून पुस्तकमें ही है। सरकारी अधिकारियोंके दिलोंमें रहनेकी बात कानूनमें कहां है? अरे, हरिजन मिनिस्टरोंसे भी लोग कतराते हैं, तो गरीबकी रंधी खीर तो कौन खाय? पंचायती राज्यमें तो बहुमतका राज्य है। जब धर्मका नाम लेकर जवाहरलालजीके खिलाफ प्रभुदत्त ब्रह्मचारी खड़े होकर प्रजाको भड़का सकते हैं, तो बिचारे हरिजनोंके खिलाफ पंचोंको भड़काना कितना आसान है? क्या अगले १००–२०० साल तक भी बहुमत हरिजनोंको न्याय दिला सकेगा? अैसी आशा की जा सकती है? कमसे कम मुझे तो नहीं है। असेम्बली और संसदमें जो अुनके स्थान सुरक्षित हैं, अुन्हें भी सरकार हटानेकी बात सोचती है। यह होने पर देखना है कि कितने हरिजन सदस्य आम चुनावमें चुनकर आते हैं।

बापूजीने अस्पृश्यके लिअे अच्छेसे अच्छा शब्दप्रयोग किया है हरिजन। लेकिन अिस शब्दसे क्या भगवत् भक्तका बोध होता है? हरगिज नहीं। हरिजन-सेवक-संघ, सरकार, और कुछ गिने-चुने हरिजन-सेवक भी बड़ी सहानुभूतिसे कहते हैं: हरिजनोंके बच्चोंको पढ़ाया जाय, अुनके घर बनानेके लिअे जमीन और दूसरी मदद दी जाय, अुनका स्तर अूंचा अुठाया जाय। लेकिन भंगी पाखाना-सफाअी ही करते रहें, चमार मरे जानवर ही खींचते रहें, और अिसके बदलेमें जब वे किसी मंदिरमें, सार्वजनिक कुओं पर, होटल अथवा मिठाअीकी दुकानों पर अपना समान अधिकार चाहते हैं, तो धर्मके ठेकेदारोंकी नाव मझधारमें डूबनेकी नौबत आ जाती है।

किसीको नीच समझना पाप है। लेकिन अेक समाजके समाजको यहां तक महसूस करनेको बाध्य कर देना कि वह खुद अपने-आपको नीच समझकर हमसे बचकर निकलने लगे, अिससे बड़ा भी कोअी पाप हो सकता है? लोग बात-बात पर बापूजीके नामकी दुहाअी देते हैं, लेकिन बापूजीका जो नियम था अपना पाखाना आप साफ करनेका और मुर्दा जानवरकी सब क्रिया ज्ञानपूर्वक अपने हाथसे करनेका, अुसका अमल करनेवाले कितने माअीके लाल हैं?

लोग कहते हैं हरिजन गंदे रहते हैं, मदिरा पीते हैं, मुर्दार मांस खाते हैं; अिनमें सुधार करें तो अिनके साथ मिलनेमें हमें कोअी हर्ज नहीं है। मैं पूछना चाहता हूं कि ये तो साधनहीन और अशिक्षित हैं। भूखे मुर्दार मांस खाते हैं। लेकिन जो साधन-संपन्न, शिक्षित, सभ्य माने जानेवाले सज्जन दूधमें पानी, घीमें जमा तेल, हल्दीमें पीली मिट्टी, अनाजमें धूल और कंकर तथा दूसरे खाद्य पदार्थोंमें अखाद्य मिलाकर, बेहिसाब ब्याज लेकर, सरकारी नौकर रिश्वत लेकर धन और सत्ताकी मदिराके नशेमें चूर रहते हैं और गरीबोंका जिन्दा मांस खानेमें जिनके दिल गंदे नहीं होते हैं, अुनको समाजमें अुच्च स्थान मिल सकता है! और हमारी गंदगीको साफ करनेवाले, सब प्रकारसे दीन-हीन अिन हरिजनोंको हम दूर ही रखना चाहते हैं।

मेरी आंखोंके सामने दुर्गापुरा गांवमें अेक गरीब भंगीने मकानकी जमीन ली है, जिसके पास अेक भी अिंच जमीन नहीं है। वह अिसी गांवका पुराना बाशिंदा है। अेक सेठजी, जिनके पास ४–५ मकान हैं और जो अुन्होंने दूसरोंको भाड़े दे रखे हैं, अुस जमीन पर भी अपना हक जमानेकी खटपटमें जमीन-आसमान अेक कर रहे हैं। दुःखकी बात तो यह है कि वे कांग्रेसके क्रियाशील सदस्य भी हैं, अैसा मैंने सुना है। जब मैंने अुनको भंगीके पक्षमें जमीन छोड़नेको समझाया और कहा कि आपके पास तो काफी मकान हैं, अिस बिचारेको बसने दो तो बोले, अजी, मेरे पास तो मकानोंकी बड़ी तंगी है। मैं तो व्यापारी आदमी हूं, मेरा घर अन्दर चलकर तो देखो। रूअी रखनेको भी जगह नहीं है। मैं अुनके मुंहकी तरफ देखता ही रह गया और बोला कि सेठजी अिसके तो बालक रखनेकी भी जगह नहीं है। लेकिन अुनकी रूअीके सामने अिसके बालकोंकी क्या कीमत? आगे अुन्होंने कहा, अजी, ये लोग बड़े गंदे रहते हैं, मांस-मदिरा खाते-पीते हैं। पड़ोसमें रहनेसे हमारे और अिनके बालक भी मिलेंगे। मैंने हंसकर कहा, मैं अिसीलिअे तो अिसे आपके पास बसाना चाहता हूं कि आपकी सत्संगतिसे यह भी पवित्र हो जाय। सेठजी बोले, अभी अिनके आचरण सुधरनेवाले नहीं हैं। यह है हमारी सभ्यताका नमूना! अिस प्रश्नको मैं बड़ी दिलचस्पीसे देख रहा हूं कि अिस गरीब भंगीको अिस सभ्य समाजका और अिस पंचायती राज्यका क्या न्याय मिलता है।

परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि अन्यायको चुपचाप सहन करनेकी भी प्रतिक्रिया होती है और भयंकर होती है। प्रतिशोध प्रकृतिका नियम है। न्याय पानीकी भांति अपना मार्ग स्वयं खोज निकालता है। महाभारत हमें यह भी पाठ सिखा चुका है। साम्राज्यवादके दिन लद चुके। अुसी प्रकार वर्गराज्य, जिसे गुटबंदी-राज्य कहा जा सकता है, समाप्त होना ही है। तब तो पारस्परिक कटुता बिना फैलाये अपने अिन आत्मीयोंको हमारे समाजका ही अभिन्न अंग समझते हुअे आत्मवत् आचरण करनेमें ही बुद्धिमानी है, न्याय है — अुनके साथ नहीं, हमारे खुदके साथ।

बलवंतसिंह

www.vinoba.in

श्रम और श्रमिक

समाजवाद और साम्यवादके अिस युगमें जब हम व्यक्तियोंके वीच समानताके आधार पर संपत्तिके समवितरणकी चर्चा सुनते हैं, तो हमें यह विचार सूझता है कि जगत्‌को संपत्तिके समवितरणकी अपेक्षा संपदाके सम्यक् अुपार्जन पर अपनी समूची शक्ति केंद्रित करनी चाहिये। संपत्तिका संचय और संग्रह अवांछनीय अुत्पादन-व्यवस्थाका प्रतिफल है।

सम्यक् अुपार्जनका अर्थ है श्रमसे अुपार्जन। संपत्ति पानेका अधिकार गौण वस्तु है। भारतीय संस्कृति अिसकी अपेक्षा करके 'श्रम'के कर्तव्यको प्राधान्य देती है। संपत्तिके समान वितरणकी अपेक्षा यदि हम राष्ट्रके प्रत्येक स्वस्थ नागरिकको श्रम करनेकी प्रतिज्ञा दिला सकें, तो हम अुस दर्शन पर अपने जीवनको आधारित कर सकेंगे, जिसमें शोषणका कोअी स्थान नहीं है। शोषण शब्दसे अेकदम ही यह अर्थ निकलता है कि समाजके भीतर कुछ व्यक्ति अैसे हैं जो अपने श्रमसे अर्जित संपत्ति पर नहीं जीते वरन् वे स्वयं निकम्मे बने रहकर दूसरोंके श्रमका फल हड़प जाते हैं।

आज समाजके भीतर अेक अैसी कल्पना घर कर गयी है कि मेहनत करना अभिशाप है। यह भावना हमारे शिक्षित भाअी-बहनोंके मनमें तो विशेष रूपसे घुस गयी है। यह भावना ही समाजके भीतर अनाचार और अत्याचारकी जननी है। श्रम करनेसे जी चुरानेवाला व्यक्ति या तो भूखों मरेगा या दूसरोंकी रोटी छीनकर खानेका प्रयत्न करेगा। आज समाजके भीतर चारों ओर भूख और नंगेपनसे पीड़ित लोग बेरोजगारीको नष्ट करनेके लिअे सरकारका मुंह ताकते हैं, परंतु जब अिन लोगोंसे कहा जाता है कि अिन्हें मजदूरी करनी चाहिये तो ये बगलें झांकने लगते हैं। श्रम और श्रमिकके प्रति अिनके मनमें घृणा घुसी हुअी है।

श्रमसे जी चुरानेवाले लोगोंकी दो श्रेणियां हैं — (१) शरीर-शक्तिमें संपन्न तथा (२) बुद्धि-वैभवसे युक्त। शरीरसे बलिष्ठ व्यक्ति दूसरोंकी रोटी छीननेके लिअे चोरी करता है, डाका मारता है तथा हत्या भी करनी पड़े तो करता है। बुद्धि-विलासी लोग दूसरोंकी रोटी शरीर-बल द्वारा न छीनकर बुद्धिके बल द्वारा छीनते हैं। यह भी शोषण है। बुद्धिजीवी लोग अपनी प्रखर और कुशाग्र बुद्धिके बल पर अैसे नये-नये साधनोंकी खोज कर लेते हैं, जिससे कि अुन्हें मेहनत किये बिना ही संपत्ति मिल जाये। चोर, डाकू और बुद्धिके बल पर शरीरसे श्रम किये बिना खानेवाले लोगोंमें कोअी अन्तर नहीं है।

श्रमसे जी चुरानेका अर्थ है अपने सहज धर्मसे विचलित होना। सहज धर्म छोड़नेके अुपरांत व्यक्तिके नैतिक पतनकी कोअी मर्यादा नहीं रहती। वह किसीके प्राण लेने तकके लिअे अुतारू हो जाता है। श्रम शरीरका बुनियादी धर्म है। वह शरीरका केवल धर्म अर्थात् कर्तव्य ही नहीं, अधिकार भी है। निरंतर वैज्ञानिक शोध होते रहने पर भी आजके जगत्‌में रोगों और औषधियोंकी मात्रा, संख्या तथा प्रकारमें सतत वृद्धि हो रही है। अिसका कारण है शरीर-श्रमका दुर्लक्ष्य किया जाना। अिन रोगों और रोगियोंकी संख्याका ९५ प्रतिशत हमें नगरों और शिक्षित वर्गोंमें ही मिलता है।

भोजन जिस प्रकार शरीरके सम्यक् संचालनके लिअे अनिवार्य है, अुसी तरह अुसके सम्यक् पाचनके लिअे शरीर-श्रम भी चाहिये। श्रम करके न खानेवाला समाज चोर ही नहीं, आत्मघातक भी है। महात्मा गांधीने कहा था — "जो काते वह पहने।" महर्षि विनोबाने कहा है — "जो खावे वह अुगावे।" हमें अिन महत्त्वपूर्ण सूत्रोंका मनन करना चाहिये। जब तक स्वर्णको हमने सम्मान दे रखा है, वह सम्मानित है। आज अुसमें हमें खरीदनेकी शक्ति आ गयी है। मनुष्यकी सेवाअें चंद चांदीके टुकड़ोंमें मोल ली जा सकती हैं। कैसी घिनौनी अवस्था है यह! मानवताको यदि सम्मानपूर्वक जीना है, तो अुसे स्वर्णकी मुद्रा नहीं श्रमकी मुद्रा चाहिये। श्रम ही सच्ची मुद्रा है। अुसके भीतर जीवनके लिअे आवश्यक प्रत्येक सामग्रीको मोल लेनेकी शक्ति है। हमें अुसे पहचानकर अुसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

नेमिशरण मित्तल

वनस्पति घी और गोसेवा

देशमें विजिटेबल घीके विरोधमें अेक आन्दोलन चल रहा है। किन्तु अिस विषयमें हम धीरे-धीरे नीचे अुतरते जा रहे हैं। अेक समय था जब विजिटेबल देशमें अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। यहां तक कि धार्मिक दृष्टिके लोग अुसे छूना तक पसंद नहीं करते थे। बादमें ज्यों ज्यों अिसका प्रचार होता गया शिक्षित समुदायने अिसे अपनाना शुरू किया और यह दुर्भाग्यकी बात है कि देशके व्यापारियोंने अिससे नाजायज लाभ अुठाना शुरू किया। शुद्ध घीमें अिसे मिलाकर शुद्ध घीके नामसे बेचा जाने लगा। यह अनैतिकता अितनी बढ़ गअी है कि आज विश्वस्त रूपसे शुद्ध घीका मिलना कठिन हो गया है। अैसी स्थितिमें शुद्धताके नाम पर अधिक पैसे देकर भी मिलावटी घी खानेकी मूर्खता करनेकी अपेक्षा शुद्ध विजिटेबल ही क्यों न खाया जाय, अिस लाचारीमें कअी परिवारोंने अिसे खाना स्वीकार कर लिया। अलबत्ता, कुछ लिखे-पढ़े परिवार अिस पर धोखेबाजीसे निकलनेवाली डॉक्टरी रायको आधार मानकर अिसे पसंद करते हैं।

अितना सब होते हुअे भी यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अिसे खाते हैं सब लाचारीमें ही। शायद ही कोअी अैसा व्यक्ति हो जो अच्छे घीके मिलने पर भी अिसे ही खाना पसन्द करे। स्वयं अिसके निर्माता भी अपने लिअे अच्छे घीकी खोजमें रहते हैं।

कितनी लाचारी! आखिर यह लाचारी क्यों? क्या हमारे देशमें पशु रहे नहीं अथवा अुनके पालनेवाले खतम हो गये? अथवा चारे-दानेकी कमी आ गअी? बात क्या है जो हम अपने जीनेके लिअे भी घी जैसी चीज, जो कि जीवनके लिअे अमृततुल्य है, प्राप्त करनेमें लाचार हैं और अिस लाचारीमें हमें अस्वास्थ्यकर पदार्थ खाना पड़ता है? जहां तक घी व दूधका प्रश्न है, प्रकृतिकी व्यवस्थामें अिसकी पैदावारका अत्यंत सुलभ अेवं निखर्चा रास्ता है। पेड़की पत्तियां जो सूखने पर अुससे अलग हो पड़ती हैं तथा जमीनका घास जो हमारी ठोकरोंसे नष्ट होता रहता है, अुसे खाकर पशु हमें घी-दूध देते हैं। अिससे अधिक सस्ती व्यवस्था और हो ही क्या सकती है? लेकिन दु:खकी बात है कि प्रकृतिके अिस सस्ते सौदेको हमने अत्यधिक महंगा बना दिया है। अतीतकी लंबी गुलामी और अुसके कारण जीवन-यापनकी अनिश्चितताने हमारे खूनमें पैसेकी प्रधानताको अितना ठूंस कर भर दिया है कि आज स्वतंत्रताके बाद भी देशके अर्थशास्त्रमें पैसेकी ही प्रधानता कायम है। सारा काम पैसोंसे चलता है। हम मानने लगे हैं कि सारी दुनिया पैसों पर ही टिकी हुअी है और निर्माणकी वस्तुअें अेवं निर्माणके केन्द्र हमारी आंखोंसे ओझल हो रहे हैं। हमारा सब व्यापार पैसेके आधार पर चलता है। हम पैसेकी भाषामें ही बोलने लगे हैं। हमारी सारी योजनायें पैसेकी परिभाषामें बनती हैं। हमारा घाटा-नफा पैसोंमें ही आंका जाता है। किन्तु हम भूल रहे हैं कि पैसा सब कुछ होते हुअे भी कुछ नहीं है। अगर हमारी जमीनसे काश्त होना बन्द हो जाय, पशु दूध देना बन्द कर दें और पृथ्वी अपने अुदरसे निकलनेवाले खनिज पदार्थोंसे अिनकार कर दे तो पैसा कुछ भी नहीं है।

अत: जहां तक विजिटेबलसे छुटकारा पानेका सवाल है, हमें अपने पशुओंकी तरक्की करनी होगी। आज अुनकी घी-दूध पैदा

www.vinoba.in

करनेकी शक्ति अत्यधिक क्षीण हो गअी है। नसल-सुधारके तरीकोंसे अुसे बढ़ाया जा सकता है। हम अपने पड़ोसी राष्ट्रोंकी ओर देखें। वे करोड़ों मन घी-दूध प्रतिवर्ष भारतको अनुदान देते हैं। अुन्होंने अपने पशुओंकी नसल अितनी सुधार ली है कि वे अपनी मांग पूरी करनेके बाद औरोंको भी बहुत बड़ी मात्रामें घी-दूध दे सकते हैं। पशु-संख्याके हिसाबसे हमारा देश आज दुनियामें सर्व प्रथम है। दुनियाके अेक चौथाओ पशु हमारे यहां हैं, किन्तु दूधके औसत अुत्पादनमें हम सबसे पिछड़े हुअे हैं। हमारे यहां फी पशु औसत अुत्पादन ७–८ छटाकसे अधिक नहीं है। अतः पशुओंकी नसल सुधारनेकी आवश्यकता है। और यह काम और देशोंके बनिस्बत हमारे यहां और भी आसान है। क्योंकि हमारे यहां पशुओंके प्रति पूज्य भावना पाअी जाती है। गायको तो हम माता मानते हैं। अितना ही नहीं, मौका आने पर अुसके लिअे मर मिटनेकी भावना आज भी हममें विद्यमान है। आज देशमें लाखों रुपये गायके नाम पर संग्रह किये जाते हैं और गोशालाओं द्वारा व्यय होते हैं। अगर हम नसल-सुधारके शास्त्रको सामने रखकर काम करें तो अितनी बड़ी निधिसे हमारे पशुओंका कायापलट हो सकता है। फिर न चाहते हुअे भी लाचारीमें विजिटेबल खानेकी आवश्यकता हमें क्यों होनी चाहिये?

रामगोपाल वर्मा

दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचार

[ता० २४-१२-'५५ को तिरुच्चिरापल्लीमें हुअे ग्यारहवें तामिलनाड़ हिन्दी प्रचारके सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष श्री जी० सी० पट्टाभिरामके भाषणसे।]

गत अक्तूबरकी दो तारीखको हमारे पूज्य नेता श्री जवाहरलाल नेहरूने मद्रासमें मार्केकी बात कही थी। अुन्होंने कहा कि हमारे संविधानमें जो तामिल, तेलुगु, गुजराती, मराठी आदि चौदह राष्ट्रभाषाओंके नाम लिये गये हैं, अुनमें हिन्दी भी अेक है और वह दूसरी भाषाओंसे किसी भी तरह ज्यादा राष्ट्रीय नहीं है। अुन्होंने वादा किया कि हिन्दी दूसरी भाषा बोलनेवालों पर लादी नहीं जायगी। संघ-सरकारके शासनकी सुविधा, अुसको समझने और बोलनेवालोंकी अधिकता और प्रचार करनेकी सरलताके कारण ही हिन्दीको सरकारी भाषाका पद दिया गया है। हिन्दीको यह पद अिसलिअे नहीं दिया गया कि वह दूसरी भाषाओंसे अूंची या समृद्ध है। दुनियामें अधिक लोगोंसे बोली जानेवाली भाषाओंमें अंग्रेजी और चीनी भाषाके बाद हिन्दीका स्थान है।

यहां प्रधानमंत्रीकी ही बात बताअूंगा। अुन्होंने वादा किया कि "दूसरी किसी भी भाषाकी अुन्नतिमें हिन्दी रुकावट नहीं डालेगी।" "हिन्दी थोपी जाती है।" — यह कहना या समझना बिलकुल गलत है। असलमें अ-हिन्दीवालों पर, चाहे वे सरकारी काममें लगे हों या दूसरे काम करते हों, हिन्दीके कारण किसी तरहका बोझा डालनेकी कोअी कार्रवाअी नहीं की जाती।

फिर, अभी हालके हैदराबादके भाषणमें प्रधानमंत्रीने अिस बात पर जोर दिया कि अिस देशकी सभी भाषाओंको आगे बढ़नेके लिअे बराबरीके मौके देना और सभी लोगोंको अपनी मातृ-भाषाके जरिये शिक्षा पानेका मौका देना सरकारका फर्ज है। अिसलिअे हमारे प्रधानमंत्रीके अिस वादेके बाद और संघ-सरकारके प्रधानकी हैसियतसे अपने वादेको अमलमें लानेका आश्वासन देनेके बाद, हिन्दी-विरोधी आन्दोलन अपने आप मर जायगा; क्योंकि यह आन्दोलन अिसी डरसे पैदा हुआ है कि हिन्दी आकर तामिलको अुसके स्थानसे हटा देगी।

हिन्दी भाषा आज जो बनायी जा रही है, वह हास्यास्पद है। साहित्यिक हिन्दी और बोलचालकी हिन्दीके बीच जो खाअी है, अुसे भर देना चाहिये। हिन्दीके हिमायतियोंमें चंद लोगोंका जोश अिस भाषाको ज्यादासे ज्यादा जटिल और मुश्किल बना रहा है और मामूली जनतासे बहुत दूर ले जा रहा है। किसी भी भाषाकी तरक्कीके लिअे सबसे जरूरी बात यह है कि अुस भाषाका साहित्यिक स्तर मामूली आदमीकी भाषासे बहुत दूर न हो। मिसालके तौर पर हिन्दी जाननेवाले सब लोग 'चश्मा' तो जानते हैं, लेकिन 'अुपलोचन द्विगोलक' नहीं जानते। 'नेकटाअी' को 'कंठ-लंगोट' या 'कंठ-कौपीन' कहना अेकदम हंसीकी बात है। रेलवे साअिन बोर्डों पर जो हिन्दी लिखी है, और ऑल अिण्डिया रेडियोमें जो खबरें देते हैं, वे अिस दर्जेकी हैं जो समझमें नहीं आतीं।

मुझे खुशी है कि श्री नेहरूजीने दिल्लीमें पुस्तक प्रकाशकों और विक्रेताओंके संघमें सात दिसम्बरको बोलते हुअे अिस रुखका खण्डन किया।

हमारी तामिल भाषा विकासकी नजरसे संस्कृतके टक्करकी है। समयके हिसाबसे सभी राष्ट्रभाषाओंमें तामिलका स्थान सबसे आगे है और संस्कृतका समकालीन भी है। फिर भी तामिलनाड़के लोग यह मानते हैं कि हिन्दी सीखनेसे हम अिस देशको अेक बनानेमें हाथ बंटा सकते हैं; क्योंकि यह हिन्दुस्तानमें ज्यादा लोगोंके बोल-चालकी भाषा है और यह **हिन्दुस्तानकी आंतर-भाषा** है। अिसलिअे दक्षिणके हिन्दी-प्रचारकोंका यह धर्म हो जाता है कि वे अैसी भाषा सिखावें, जो अुत्तरके लोग बोलचालमें अिस्तेमाल करते हों, न कि हिन्दीके जोशमें गुमराह लोगोंकी गढ़ी हुअी नकली भाषा। हमें अिस बातसे मतलब नहीं कि अुस भाषामें अरबीके अलफाज हैं या फारसीके शब्द हैं या संस्कृतके। अुस भाषाको चाहे अुर्दू कहें, हिन्दुस्तानी कहें या हिन्दी। हम अपने विचार अुत्तर भारतके दोस्तोंको अुनकी बोलचालकी भाषामें बताना चाहते हैं। आप हमें जो हिन्दी सिखायें वह अिसमें मदद दे तो काफी है। अिसलिअे मेरी अुम्मीद है कि यहां जो प्रचारक अिकट्ठे हुअे हैं वे अिस खास पहलू पर खूब विचार करेंगे। दक्षिण हिन्दुस्तानमें हिन्दीका विकास आप लोगोंके हाथमें है और आप हमें ठीक रास्ता दिखावें। अिस तरहकी व्यावहारिक बातोंको सुलझानेमें भावनाओंके लिअे जगह नहीं है। आपका काम अुत्तर और दक्षिणको अेक बनाना है। मेरा पक्का विश्वास है कि गुमराह और कट्टर हिन्दीवालोंकी हिन्दी दक्षिण और अुत्तरको अेक नहीं कर सकती।

जी० सी० पट्टाभिराम

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
भाषा, संस्कृति और राज्योंकी पुनर्रचना	जवाहरलाल नेहरू	३५३
झूठे डर	प्राणलाल अेस० कापड़िया	३५४
बरबादीकी बुनियाद पर आबादी?	मगनभाई देसाई	३५६
अम्बर चरखेके बारेमें विवाद	रूपनारायण	३५७
अिनका बेली कौन?	बलवन्तसिंह	३५८
श्रम और श्रमिक	नेमिशरण मित्तल	३५९
वनस्पति घी और गोसेवा	रामगोपाल वर्मा	३५९
दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचार	जी० सी० पट्टाभिराम	३६०
टिप्पणियां:		
हिरोशिमाका स्मारक स्तंभ	म० प्र०	३५७
तामिलनाड़में हिन्दी	म० प्र०	३५७

www.vinoba.in